1. बर्मा का प्रथम युद्ध (1824-26 ई.)

भारत के उत्तर-पूर्व में बर्मा का राज्य था। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जिस प्रकार गोरखा जाति उत्तर-भारत में एक संगठित राज्य स्थापित कर रही थी, उसी प्रकार भारत की पूर्वी सीमा पर चीनी-तिब्बती मिश्रित एक जाति आवा (Ava) को राजधानी बनाकर बर्मा का एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर रही थी। अपने बहादुर सरदार अलोमपोरा के नेतृत्व में बर्मा राज्य का बहुत विस्तार हुआ। उसने इरावदी नदी का मुहाना, पेगू, तनासरम और अराकान का प्रदेश जीतकर एक बड़े राज्य की नींव डाली। इसके पश्चात् बर्मा का राज्य विभिन्न दिशाओं में बढ़ता गया और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में उन्होंने असम, मणिपुर आदि पर भी अधिकार कर लिया जिससे उनके राज्य की सीमाएँ अंग्रेजों के भारत के राज्य की सीमाओं से मिलने लगीं।

बर्मा से अंग्रेजों के व्यापारिक सम्बन्ध 1587 ई. से थे परन्तु वे सम्बन्ध बहुत साधारण थे। बर्मा और अंग्रेजी राज्य की पूर्व की सीमाएँ जब मिलने लगीं तो इनके आपस के सम्बन्ध खराब होने लगे। अंग्रेजों ने अठारहवीं सदी के अन्त में बर्मा से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया और इस उद्देश्य से 1795 ई. में कैप्टेन सिम्स (Captain Symes) को, 1797 ई. में कैप्टेन कोक्स (Captain Cox) को, 1802 ई. में पुनः कैप्टेन सिम्स को और 1803 ई., 1809 ई. व 1811 ई. में कैप्टेन कैनिंग (Captain Canning) को राजदूत बनाकर बर्मा भेजा। परन्तु बर्मा-दरबार ने उनकी नियुक्ति का कोई स्वागत नहीं किया और न उनको वहाँ भेजने से कोई लाभ हुआ।

अंग्रेजों के बर्मा से सीमा सम्बन्धी झगड़े उसी समय से आरम्भ हो गये थे जबकि बर्मा ने अराकान को जीत लिया था। अराकान के व्यक्ति जब भागकर भारत की सीमाओं में आये तो 1794 ई. में 5,000 बर्मी सैनिकों ने भारत की सीमा में प्रवेश करके उन व्यक्तियों को अंग्रेजों से वापस माँगा। अंग्रेजों ने उन व्यक्तियों को वापस कर दिया। इस घटना से बर्मा का साहस बढ़ा। परन्तु लॉर्ड हेस्टिंग्स के समय में अंग्रेजों की इस नीति में परिवर्तन हुआ। हेस्टिंग्स ने भगोड़ों को वापस करने से इन्कार कर दिया; यद्यपि उसने यह आश्वासन दिया कि वह अराकानियों को भारत की सीमा से बर्मा पर आक्रमण नहीं करने देगा। इससे बर्मी सन्तुष्ट नहीं हुए और उनके सम्बन्ध अंग्रेजों से खराब हो गये। जब बर्मा ने असम को भी जीत लिया तब ये सीमा सम्बन्धी झगड़े और बढ़ गये। 1818 ई. में रामरी (Ramri) के बर्मी गवर्नर ने चटगाँव के अंग्रेज मजिस्ट्रेट से रामू, चटगाँव, ढाका और मुर्शिदाबाद को माँगा और लिखा कि यह जिले अराकान के अधिकार में थे, इस कारण इन पर बर्मा का अधिकार है क्योंकि अराकान बर्मा राज्य का एक भाग है। अंग्रेजों द्वारा इन्हें न देने पर युद्ध की धमकी दी गयी। अंग्रेज

Scanned with CamScanner

गवर्नर-जनरल ने पेगू के गवर्नर को लिखा कि सम्भवतः यह पत्र बर्मा के राजा की स्वीकृति से नहीं लिखा गया है और "यदि यह पत्र आवा-दरबार की स्वीकृति से भेजा गया है तो अंग्रेजी सरकार युद्ध को घोषित मानती है।"[1] इस प्रकार बर्मा और अंग्रेजों के सीमा सम्बन्धी झगड़े बढ़ते गये। यद्यपि लॉर्ड हेस्टिंग्स ने कड़ा रुख अपना लिया था परन्तु वह युद्ध को टालता रहा क्योंकि भारत की सीमाओं में ही उसे अनेक समस्याओं का सामना करना था।

लॉर्ड एम्हर्स्ट (Lord Amherst) के समय में बर्मा के युद्ध को न टाला जा सका। युद्ध का मुख्य कारण एक तरफ बर्मा-दरबार की अज्ञानता एवं उद्दण्डता तथा दूसरी तरफ अंग्रेज-साम्राज्यवाद का स्वाभाविक विस्तार था। बर्मा का राजा और वहाँ के निवासी दोनों ही भारतीय परिस्थितियों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। अराकान, मणिपुर और असम जैसे छोटे राज्यों को जीतकर उन्हें अपनी शक्ति का अभिमान हो गया था। उन्हें भारत में अंग्रेजों की विशाल शक्ति का कोई ज्ञान न था। बर्मा के सेनापति महाबुन्देला ने असम को सरलता से जीतकर यह अनुमान किया कि वह अंग्रेजों को भी सरलता से परास्त कर सकता है। उसने बर्मा के राजा को एक पत्र लिखा जिसमें उसने "बर्मियों को शेर और अंग्रेजों को गीदड़ बताया।"[2] उसने यह भी लिखा कि वह कई भारतीय राजाओं से पत्र-व्यवहार कर रहा है और जब बर्मी भारत पर आक्रमण करेंगे तो वे सभी अंग्रेजों के विरुद्ध बर्मा का साथ देंगे। बर्मा के साधारण व्यक्तियों का भी यही विचार था कि उनका शक्तिशाली राजा अंग्रेजों को सरलता से परास्त कर देगा। इस कारण जैसा कि क्रॉफोर्ड (Crawford) ने लिखा है, "राजा से लेकर भिखारी तक युद्ध के लिए तैयार था।"[3]

दूसरी तरफ अंग्रेज सम्पूर्ण भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद पूर्व में साम्राज्य-विस्तार के लिए उत्सुक थे। साम्राज्यवाद की स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार उन्हें पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही सीमाओं पर अपने राज्य का विस्तार करना था जैसा कि तृतीय मराठा युद्ध के पश्चात् हुआ। इस कारण बर्मा और अंग्रेजों की बढ़ती हुई साम्राज्यवादी इच्छाओं के कारण युद्ध होना आवश्यक था। झगड़े की छोटी-छोटी बातों को तूल दिया गया और शीघ्र ही युद्ध की स्थिति बन गयी।

कुछ अंग्रेजों को, जो चटगाँव की सीमा के निकट हाथियों का शिकार कर रहे थे, बर्मियों ने पकड़ लिया। एक अंग्रेजी नाव के सामान पर जो 'कूर के नाले' (Koor Nullah) से निकल रहा था, बर्मियों ने चुंगी माँग ली। ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए अंग्रेजों ने टेक नाफ (Tek Naaf) के दर्रे और शाहपुरी के द्वीप पर अपनी सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं। जनवरी 1823 ई. में बर्मा ने अंग्रेजों से शाहपुरी के द्वीप को खाली करने की माँग की जिसके लिए अंग्रेजों ने इन्कार कर दिया। सितम्बर 1823 ई. में बर्मियों ने शाहपुरी पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। बाद में उन्होंने उसे खाली छोड़ दिया किन्तु यह धमकी दी कि यदि अंग्रेजों ने शाहपुरी पर पुनः अधिकार किया तो वे ढाका और मुर्शिदाबाद को भी जीत लेंगे। इस प्रकार शाहपुरी के छोटे और निर्जन द्वीप पर, जिस पर किसी का भी कानूनी अधिकार न था, बर्मियों और अंग्रेजों में झगड़ा हुआ।

---

1 "If I could suppose the letter to have been dictated by the king of Ava, the British government would be justified in considering war as already declared."
—*Lord Hastings to the Governor of Pegu.*

2 "....compared the Burmese with lions and the English with jackals."
—*Letter of Maha Bundela.*

3 "From the king to a beggar (the Burmese) were hot for a war." —*Crawford.*

Scanned with CamScanner

इससे भी अधिक खराब स्थिति उस समय हुई जब बर्मियों ने कछार के शासक गोविन्दचन्द्र को सहायता देकर उसे उसका राज्य वापस दिलवा दिया। गोविन्दचन्द्र को अपना राज्य छोड़कर भागना पड़ा था। पहले वह भागकर बंगाल आया था और उसने अंग्रेजों से सहायता माँगी थी। जब अंग्रेजों ने उसकी कोई सहायता नहीं की तो उसने बर्मा से सहायता माँगी और उसकी सहायता से पुनः कछार का शासक बन गया। लॉर्ड एम्हर्स्ट ने कछार के राजा का बर्मा के संरक्षण में जाना बंगाल की सुरक्षा के लिए खतरनाक माना। एम्हर्स्ट का विश्वास था कि बंगाल में आने के लिए सबसे सरल दर्रा कछार राज्य में था। इस कारण कछार का बर्मियों के हाथों में जाना बंगाल और सिलहट दोनों के लिए खतरनाक था। एम्हर्स्ट तो असम पर भी बर्मियों के अधिकार से चिन्तित था। उसका कहना था कि बर्मी असम से ब्रह्मपुत्र नदी के द्वारा अचानक ही केवल पाँच दिन में अपनी बड़ी से बड़ी सेनाएँ बंगाल की सीमाओं तक ला सकते थे। इस कारण लॉर्ड एम्हर्स्ट ने गोविन्दचन्द्र को अपने संरक्षण में ले लिया और एक सेना कछार भेज दी। गोविन्दचन्द्र ने अंग्रेजी संरक्षण को स्वीकार कर लिया, दस हजार रुपये वार्षिक कर देना स्वीकार किया और अपना आन्तरिक शासन अंग्रेजों को सौंप दिया। इसी प्रकार जैन्तिया (Jaintia) के छोटे राज्य ने भी अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार कर लिया। बर्मा सरकार ने इस घटना का बहुत बुरा माना और एक सेना कछार भेजी जिसका एक युद्ध अंग्रेज सैनिकों से हुआ।

इसी बीच में शाहपुरी के द्वीप पर पुनः झगड़ा हो गया। बर्मियों ने माँग की कि शाहपुरी को तटस्थ घोषित कर दिया जाय परन्तु अंग्रेजों ने इसे स्वीकार नहीं किया। फरवरी 1824 ई. में बर्मियों ने उस द्वीप पर आक्रमण किया और उसे जीत कर वहाँ बर्मा का झण्डा फहरा दिया। तत्पश्चात् वे द्वीप को खाली छोड़कर वापस चले गये। परन्तु लॉर्ड एम्हर्स्ट तब तक युद्ध का निश्चय कर चुका था। 24 फरवरी, 1824 ई. को अंग्रेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

बर्मा के जंगल, पहाड़ और नदियों के कारण अंग्रेजों को आक्रमण करने में बड़ी कठिनाइयाँ थीं जबकि बर्मियों को सुरक्षा करने में अत्यधिक सुविधा थी। युद्ध का आरम्भ भी ठीक अवसर पर नहीं हुआ था क्योंकि शीघ्र ही वर्षा आरम्भ होने वाली थी। इस कारण इस युद्ध में अंग्रेजों को बहुत कठिनाई हुई। अंग्रेजों ने दो तरफ से सेनाएँ भेजीं। एक सेना उत्तर-पूर्व के स्थल मार्ग से भेजी गयी जिसका मुख्य उद्देश्य बर्मा में प्रवेश करना न था बल्कि केवल उन्हीं भागों पर अधिकार करना था जिन्हें बर्मा ने कुछ समय पहले जीता था। दूसरी सेना समुद्री मार्ग से रंगून होकर आगे बढ़ने के लिए मेजर-जनरल सर आर्चीबाल्ड कैम्पबैल (Sir Archibald Campbell) के नेतृत्व में भेजी गयी। बर्मी सेनापति महाबुन्देला ने चटगाँव के निकट रामू नामक स्थान पर एक अंग्रेजी सेना को परास्त किया परन्तु दूसरी तरफ 11 मई, 1824 ई. को अंग्रेजों ने रंगून जीत लिया। बर्मी रंगून को खाली छोड़कर भाग गये। परन्तु उसी समय वर्षा आरम्भ हो जाने से अंग्रेजों का आगे बढ़ना रुक गया और उनके सैनिकों में बीमारी फैल गयी। बर्मा के राजा ने महाबुन्देला को अपनी सहायता के लिए दक्षिण में बुलाया लेकिन 15 दिसम्बर, 1824 ई. को उसकी पराजय हुई और उसे पीछे हटना पड़ा। 1825 ई. में अंग्रेजों ने असम को जीत लिया और कैम्पबैल ने रंगून से आगे बढ़ना शुरू किया। महाबुन्देला ने एक माह तक अंग्रेजों को रोका परन्तु 1 अप्रैल, 1825 ई. को वह युद्ध में मारा गया जिससे उसकी सेना रात में ही मैदान छोड़कर भाग गयी। कैम्पबैल ने 25 अप्रैल को दक्षिण बर्मा की राजधानी प्रोम (Prome) पर अधिकार कर लिया। कुछ समय पश्चात् सन्धि की वार्ता आरम्भ हुई; यद्यपि साधारण तरीके से युद्ध भी चलता रहा। जब अंग्रेज बर्मा की राजधानी याण्डबू (Yandaboo) के केवल 60 मील दूर रह गये तब बर्मियों ने सन्धि का प्रस्ताव किया और 24 फरवरी, 1826 ई. को याण्डबू की सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अनुसार—

Scanned with CamScanner

1. बर्मा ने अराकान, तनासरम, येह, तवाय और मर्गी के जिले अंग्रेजों को दे दिये।
2. बर्मा ने असम, कछार और जैन्तिया के राज्यों में हस्तक्षेप न करने का वायदा किया।
3. मणिपुर के राज्य को स्वतन्त्र मान लिया गया और बर्मा ने वायदा किया कि यदि वहाँ का राजा गम्भीरसिंह वापस आ जायेगा तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे।
4. बर्मा ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में धीरे-धीरे एक करोड़ रुपया देना स्वीकार किया।
5. दोनों राज्यों ने एक-दूसरे के राज्य में राजदूत भेजना स्वीकार किया।
6. दोनों राज्यों ने एक व्यापारिक सन्धि करने का वायदा किया।
7. दोनों राज्यों ने एक-दूसरे के मित्र बने रहने का वायदा किया।

इस युद्ध से अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ। उन्हें उत्तर-पूर्व में पर्याप्त भूमि प्राप्त हो गयी और मुख्य बर्मा में उनके पैर जम गये जिससे बाद में उन्हें सम्पूर्ण बर्मा को जीतने में सुविधा हुई। परन्तु जिस प्रकार युद्ध लड़ा गया और जिस कारण युद्ध आरम्भ हुआ, उसकी इतिहासकारों ने आलोचना की है।

युद्ध में अंग्रेजों को धन और सैनिकों की हानि हुई। इस युद्ध की योजना ठीक प्रकार नहीं बनायी गयी थी। यदि मद्रास के गवर्नर सर टॉमस मुनरो (Sir Thomas Munro) के द्वारा समय पर पर्याप्त सहायता न भेजी गयी होती तो बहुत हानि होती। इन्स (Innes) लिखता है : "अनेक प्रकार से यह युद्ध बहुत हानिकारक था। सेना को जहाँ युद्ध करने के लिए भेजा गया था वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों का ज्ञान उन्हें नहीं कराया गया था और न उन्हें ठीक से रसद ही दी गयी थी।"[1] जहाँ तक बर्मियों का प्रश्न है, उन्होंने बड़ी बहादुरी से युद्ध किया परन्तु हथियारों और संगठन की दृष्टि से उनका अंग्रेजी सेना से कोई मुकाबला न था।

जहाँ तक युद्ध के कारणों का प्रश्न है, एक निष्पक्ष इतिहासकार अवश्य ही यह मत व्यक्त करेगा कि अंग्रेजों द्वारा युद्ध घोषित करने का कोई न्यायिक कारण नहीं था। बर्मा का ढाका, मुर्शिदाबाद आदि को जीतने की धमकी देना अंग्रेजों के लिए डर का नहीं बल्कि हँसी का कारण हो सकता था क्योंकि बर्मियों को अंग्रेजों की शक्ति का ज्ञान न था। शाहपुरी के द्वीप को बर्मियों ने तटस्थ घोषित करने की माँग की थी परन्तु अंग्रेजों ने उस माँग को ठुकरा दिया था। कछार के मामले में हस्तक्षेप करना अंग्रेजों के लिए अनुचित था क्योंकि पहली बार जब गोविन्दचन्द्र ने उनसे सहायता माँगी थी तब उन्होंने इन्कार कर दिया था। बर्मा राज्य की यह शिकायत उचित थी कि अराकानी अंग्रेजी भूमि से उनके राज्य पर आक्रमण करते थे। इस प्रकार अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य केवल साम्राज्य-विस्तार था और इस युद्ध को आरम्भ करने में उनका आधार औचित्यपूर्ण न था। स्वयं भारत-सरकार ने 23 दिसम्बर, 1825 ई. को कम्पनी के डायरेक्टरों को लिखे गये एक पत्र में स्वीकार किया था कि सीमा के झगड़े साधारण थे परन्तु बर्मा से कभी न कभी युद्ध आवश्यक था। इस कारण जिस समय सफलता की सबसे अधिक आशा थी, उसी समय युद्ध आरम्भ किया गया।

---

1 "The war had been in many respects a disastrous one. The expedition had been despatched in almost entire ignorance of the circumstances of the country to which it was to proceed and without any adequate preparation for securing supplies." —*Innes.*

Scanned with CamScanner

इस प्रकार यह निश्चित है कि युद्ध का मुख्य कारण बर्मा का भारत की पूर्वी सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त कर लेना था। अंग्रेजों ने उस राज्य की शक्ति को तोड़ने और बर्मा की भूमि पर अपने पैर जमाने के लिए यह युद्ध आरम्भ किया था। इसी कारण अंग्रेजों ने मुख्यतः बर्मा के निचले (दक्षिणी) भाग पर आक्रमण किया और उसमें सफलता प्राप्त की।

Scanned with CamScanner

न हो सके। सिक्ख सेना को भी इसी कारणवश ...

द्वितीय बर्मा युद्ध (1852 ई.)
(SECOND BURMESE WAR)

जनवरी, 1848 ई. में लॉर्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। अतः उसी के शासनकाल में 1852 ई. में द्वितीय बर्मा युद्ध आरम्भ हुआ। इससे पूर्व यान्दाबू की सन्धि के द्वारा प्रथम बर्मा युद्ध की समाप्ति हो गयी थी परन्तु बर्मा का नया राजा सन्धि की शर्तों को मानने के लिए तैयार न था। **इसके अतिरिक्त भी इस युद्ध के अनेक कारण थे।**

कारण (Causes)

द्वितीय बर्मा युद्ध के लिए निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे :

(1) **लॉर्ड डलहौजी का सभी यूरोपीय शक्तियों से बर्मा को अलग रखने का प्रयास**—डलहौजी के कार्यकाल में फ्रांस तथा अमेरिका आदि देश सागरों की ओर अत्यन्त तीव्र गति से अग्रसर हो रहे थे। लॉर्ड डलहौजी को आशंका थी कि कहीं कोई देश बर्मा में अपना स्थान न बना ले, ऐसा हो जाने पर ब्रिटिश हितों को पर्याप्त आघात पहुंचता। इसी कारण डलहौजी ने किसी प्रकार बर्मा पर अंग्रेजी आधिपत्य स्थापित करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

(2) **अंग्रेज व्यापारियों की शिकायतें**—प्रथम बर्मा युद्ध के पश्चात् अनेक अंग्रेज व्यापारी बर्मा में बस गए थे चूंकि इन अंग्रेज व्यापारियों के व्यापारिक अधिकार स्पष्ट नहीं थे, इसलिए कभी-कभी बर्मा की सरकार तथा अंग्रेज व्यापारियों में संघर्ष हो जाता था। अधिकांश व्यापारी प्रायः करों से बचने का प्रयास करते थे। बर्मी अधिकारी कर की चोरी में अंग्रेज व्यापारियों पर भारी जुर्माने करते थे। शेफर्ड तथा लुईस दो इसी प्रकार के अंग्रेज व्यापारी थे जिनके दोषी होने पर बर्मा की सरकार ने भारी जुर्माने किए थे। अतः बर्मा में निवास करने वाले अंग्रेज व्यापारियों ने लॉर्ड डलहौजी के पास इस सम्बन्ध में एक आवेदन-पत्र भेजा। डलहौजी तो बहाने की खोज में पहले ही था। अतः उसने इस आवदेन-पत्र के आधार पर यह आरोप

1 अंग्रेजों ने पंजाब पर 29 मार्च, 1949 को अधिकार किया था।

लगाया कि वह (बर्मा) यान्दाबू की सन्धि का उल्लंघन कर रहा है और उसने एक पत्र भेजकर मांग की कि बर्मा की सरकार अंग्रेज व्यापारियों की क्षतिपूर्ति करे।

(3) **नए शासक द्वारा यान्दाबू की सन्धि का उल्लंघन**—प्रथम बर्मा युद्ध की समाप्ति पर 1826 ई. में यान्दाबू की सन्धि सम्पन्न हुई थी परन्तु बर्मा के नए शासक धारावादी ने इस सन्धि का पालन करना अस्वीकार कर दिया तथा बर्मा में स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्ट से भी चले जाने के लिए कहा। नए शासक ने अपने देश के विधान का पालन करते हुए यान्दाबू की सन्धि का पालन करना अस्वीकार कर दिया था। बर्मा में नए शासक पर पुरानी सन्धियां लागू नहीं समझी जाती थीं, परन्तु अंग्रेजों को इसका इस प्रकार कार्य करना निःसन्देह बुरा लगा और वे इसका प्रतिशोध लेने को तैयार हो गए।

(4) **कमाण्डर लैम्बर्ट का रंगून जाना**—अपनी मांगों को स्वीकार कराने के उद्देश्य से लॉर्ड डलहौजी ने जल सेना अधिकारी लैम्बर्ट को तीन विशाल युद्धपोतों के साथ रंगून भेजा। शान्ति-वार्ता के लिए जंगी जहाजों को भेजना आश्चर्यजनक था। अतः बर्मा के शासक ने अंग्रेज व्यापारियों की शिकायतों को दूर करने का आश्वासन दिया तथा उन्हें प्रसन्न करने के विचार से रंगून के गवर्नर को भी उसके पद से हटा दिया क्योंकि बर्मा का शासक जंगी जहाजों का अर्थ भली-भांति जानता था।

युद्ध का प्रारम्भ (War begins)—इस आश्वासन के उपरान्त कमाण्डर लैम्बर्ट को शान्त हो जाना चाहिए था, मगर उसने ऐसा नहीं किया, वह तो रंगून में लड़ाई उकसाने के लिए ही पहुंचा था। अब उसने आरोप लगाया कि रंगून के नए गवर्नर ने अंग्रेज प्रतिनिधियों से न मिलकर अंग्रेजों का अपमान किया है। अपने सम्मान की रक्षा के लिए उसने बर्मा के शासक के एक शाही जहाज '**रॉयल यलोशिप**' को पकड़कर भगा लेने का प्रयास किया। इस घटना पर बर्मा की जनता भड़क उठी और उसने भगा ले जाने वाले जहाज पर गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। प्रत्युत्तर में अंग्रेजों ने भी गोलियां चलायीं। **इस प्रकार 1852 ई. में बर्मा का द्वितीय युद्ध प्रारम्भ हो गया।**

घटनाएं (Events)—डलहौजी जल सेना अधिकारी लैम्बर्ट के जहाजों पर गोलियां चलाए जाने से उत्तेजित हो गया अतः उसने बर्मा सरकार से कहा कि वह क्षमा याचना करे अथवा क्षतिपूर्ति के रूप में 12,000 पौण्ड दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाए। बर्मा सरकार को उपर्युक्त चेतावनी देने के पश्चात् डलहौजी युद्ध की तैयारी में लग गया। लेकिन बर्मा सरकार ने इन चेतावनी का कोई उत्तर नहीं भेजा। चेतावनी के बावजूद भी उत्तर न आने पर प्रथम बर्मा युद्ध के अनुभवी जनरल गाडविन को 5,800 सैनिकों तथा अनेक जंगी जहाजों के साथ बर्मा भेजा गया। गाडविन की सेना ने 14 अप्रैल, 1852 ई. तक मर्ताबन तथा रंगून पर अधिकार कर लिया। मई 1852 ई. में अंग्रेजों ने बसीन सहित पीगू के सम्पूर्ण सागर तट पर अधिकार कर लिया। सितम्बर 1852 ई. में डलहौजी स्वयं बर्मा पहुंचा। उसने अक्टूबर मास में प्रोम तथा नवम्बर मास में पीगू पर अधिकार कर लिया। कम्पनी के संचालकों की इच्छा थी कि अंग्रेजी सेनाएं आगे तक पहुंच कर सम्पूर्ण बर्मा पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लें, लेकिन डलहौजी प्रोम तथा पीगू पर अधिकार करके ही सन्तुष्ट हो गया। अतः **दिसम्बर 1852 ई. की एक घोषणा के अनुसार प्रोम तथा पीगू अर्थात् बर्मा के निचले भागों** (Lower Burma) **को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया।**

Scanned with CamScanner

परिणाम (Results)—द्वितीय बर्मा युद्ध के परिणाम अंग्रेजों के लिए अत्यन्त लाभकारी थे :

(1) उपर्युक्त विजित प्रदेशों को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया और लोअर बर्मा (Lower Burma) के नाम से एक नए प्रान्त का गठन किया गया, जिसकी राजधानी रंगून बनायी गयी।

(2) अपर बर्मा (Upper Burma) अर्थात् स्वतन्त्र बर्मा के लिए अब समुद्र तट पर पहुंचने का कोई मार्ग नहीं था अतः उसे किसी भी प्रकार की विदेशी सहायता प्राप्त होने की कोई सम्भावना न रही।

(3) बंगाल की खाड़ी के पूर्व में स्थित सम्पूर्ण सागर तट पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

(4) लोअर बर्मा की विजय से उत्तरी बर्मा की विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया तथा लोअर बर्मा की विजय से कम्पनी के व्यापार में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई।

आलोचना (Criticism)—द्वितीय बर्मा युद्ध को भड़काने तथा बर्मा के निचले हिस्सों का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय करने पर लॉर्ड डलहौजी की कटु आलोचना हुई। आलोचकों का कथन था कि शेफर्ड तथा लुईस जैसे व्यापारियों की शिकायत पर अंग्रेजों का बर्मा की सरकार से उलझना उचित नहीं था। साथ ही बर्मा सरकार से व्यापारियों की क्षतिपूर्ति करने की मांग करना भी किसी प्रकार उचित नहीं था। सबसे अनुचित बात जल सेनापति लैम्बर्ट को विशाल युद्धपोतों के साथ रंगून भेजना थी। कमाण्डर लैम्बर्ट द्वारा 'रॉयल यलोशिप' को पकड़ कर भगा ले जाना भी अनुचित था तथा अन्त में बर्मा के निचले हिस्सों का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय किसी प्रकार उचित न था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "**साम्राज्यवाद केवल अपने उद्देश्यों में ही रुचि रखता है तथा उस उद्देश्य को प्राप्त करने के साधनों की ओर कोई ध्यान नहीं देता है। इसलिए इसे अनुचित कहना केवल नेत्रहीन को नेत्रहीन कहने के समान है।**"

अवध